

Make Parliament work for democracy's sake

ET Editorials



The opposition's continued disruption of Parliament must stop. By paralysing the functioning of the legislative arm of Indian democracy, opposition parties are doing a great disservice to representative democracy and the people of this country. Instead, members must ensure that Parliament functions smoothly, their own grouses against the government are aired and legislative business gets done.

The outrage over the shortened and delayed Winter session of Parliament sits ill with the ongoing

truncation of Parliament via disruption. Democracies are messy, that is the hallmark of free and open societies. But it is the institutions of democracy that ensure it works, and Parliament is a key institution. The onus of ensuring that Parliament delivers on its promise of a functioning democracy lies with each and every member of Parliament, with the government and the Opposition.

Members, from the opposition and even the treasury benches have every right to question the government, seek clarifications, and push for modifications in laws, regulations and policy. That is not only their right but also their duty. It is incumbent on members of Parliament to ensure that the interests of their constituents are articulated and reflected in laws and policies. This responsibility is best discharged through discussion and debate, and that is only possible when Parliament is allowed to function. Sloganeering, shouting, and crowding the well of the house do not allow for any discussion.

Obstructing the functioning of Parliament is not the way to ensure accountability from government. Rather than blocking business, ask the questions, debate the laws, discuss the policies. Democracy is hard work, it is time our Members of Parliament rolled up their sleeves and got to work.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 28-12-17

वाजिब कीमत

संपादकीय

ऐसे संकेत हैं कि वित्त वर्ष 2018-19 के लिए पेश होने वाला बजट किसानों पर केंद्रित हो सकता है। इस बजट में कृषि उत्पादों का बेहतर मूल्य दिलाने पर खास जोर रहने की संभावना है जो ग्रामीण इलाकों में चौतरफा व्याप्त आर्थिक

असंतुष्टि को देखते हुए वाजिब भी है। लेकिन प्रमुख फसलों के विपणन में प्रभावी सहयोग देने के लिए सरकार जिन उपायों पर विचार कर रही है उनकी कामयाबी को लेकर खास भरोसा नहीं जग पा रहा है। एक उपाय यह है कि समर्थन मूल्य दिलाने के लिए बाजार में हस्तक्षेप का जिम्मा राज्यों पर ही डाल दिया जाए। इस दौरान किसी भी तरह का नुकसान होने पर केंद्र सरकार उसका 30 फीसदी बोझ भी उठाएगी। कुछ दालों, तिलहनों और प्याज जैसी प्रमुख सब्जियों के मामले में कमोबेश ऐसी ही व्यवस्था पहले से है जिसमें केंद्र 100 फीसदी तक नुकसान वहन करता है। लेकिन इसे भी कोई खास कामयाबी नहीं मिल पाई है। अगर न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) के दायरे में शामिल सभी कृषि उत्पादों के लिए यह लागू कर दिया जाता है तो उससे प्रदर्शन और खराब हो सकता है। इसके लिए बड़े पैमाने पर श्रमशक्ति और खरीदारी, परिवहन एवं भंडारण के लिए व्यापक ढांचा खड़ा करने की भी जरूरत पड़ेगी। संभवतः राज्य सरकारें इसका बोझ नहीं उठा पाएंगी।

गेहूं और चावल के लिए मूल्य समर्थन देने का दायित्व मूल रूप से केंद्र सरकार पर ही है लेकिन इन प्रमुख कृषि उत्पादों के लिए भी समुचित ढांचागत आधार अभी तक खड़ा नहीं हो पाया है। ऐसे में राज्यों से यह उम्मीद करना बेमानी होगा कि वे केंद्र से बेहतर प्रदर्शन करें और शुरू से ही सटीक हों। किसी भी तरह भौतिक बाजार में हस्तक्षेप पर आधारित मूल्य गारंटी व्यवस्था प्रतिकूल नतीजों से परे नहीं है। गेहूं और चावल के संदर्भ में ऐसा देखा भी जा चुका है। गेहूं एवं चावल की मूल्य गारंटी होने से इन फसलों का पूरा पैटर्न ही बदल गया है। अब अनाज मंडियों में निजी कारोबार लगभग खत्म हो चुका है और सरकार के पास अनाजों का भारी लेकिन गैरजरूरी भंडार खड़ा हो जाता है। ऐसे में बाकी फसलों के लिए भी उसी परिपाटी को अपनाना सही नहीं होगा। उत्पादन लागत कम कर और उत्पादों पर मिलने वाला रिटर्न बेहतर कर खेती को लाभपरक बनाना ही इस समस्या का टिकाऊ समाधान है। इसके लिए कृषि क्षेत्र के विपणन सुधारों को भी तेज करना जरूरी है। मंडियां बनाने के लिए निजी निवेश आकर्षित कर प्रतिस्पर्द्धा को बढ़ाया जा सकता है। इलेक्ट्रॉनिक प्लेटफॉर्म से होने वाला लेनदेन कृषि विपणन को काफी हद तक पारदर्शी बनाने का काम करेगा।

दूसरा तरीका यह है कि एकदम नई व्यवस्था ही बनाई जाए। नीति आयोग के एक कार्यबल ने कृषि उत्पादों के बाजार मूल्य एवं एमएसपी मूल्य में मौजूद अंतर का भुगतान करने वाली प्रणाली अपनाने का सुझाव दिया है। मध्य प्रदेश में तो इसे लागू भी किया जा चुका है जबकि कुछ राज्य कपास की फसल के लिए इसे लागू करने की तैयारी में हैं। इस प्रणाली में पिछले कुछ वर्षों के बाजार मूल्य के आधार पर फसलों का आधार मूल्य तय किया जाता है और ये कीमतें मिलने में कोई भी कमी रह जाने पर उत्पादकों को उसकी भरपाई की जाती है। सरकारी खरीद का प्रावधान नहीं होने से इस प्रणाली को सभी इलाकों में और सभी फसलों के लिए लागू किया जा सकता है। इसमें हमें कृषि उत्पादों का भारी भंडार भी नहीं जमा करना पड़ेगा। ऐसी व्यवस्था का अतिरिक्त लाभ यह है कि इसमें बाजार की मांग का उत्पादन से संबंध जोड़ा जा सकता है जिससे कुल उत्पादन एवं मूल्य स्थिरता के लिए जरूरी कृषि उत्पादों के बीच संतुलन साधने में भी मदद मिलेगी। कृषि उत्पादों के मूल्य-निर्धारण और उनके व्यापार से जुड़ी सुदृढ़ नीतियों की भी जरूरत है। मूल बिंदु यह है कि केंद्र को फसलों की वाजिब कीमतें दिलाने की व्यवस्था खड़ा करने की अगुआई खुद करनी चाहिए।

टचस्क्रीन से सब कुछ सीखते बच्चों की हस्तलिपि

क्षमा शर्मा, वरिष्ठ पत्रकार



कुछ दिनों पहले घर में छह साल का एक बच्चा आया था। उसने किसी थाली की तरह हाथ में अपने टैबलेट को पकड़ा हुआ था। वह दीवान पर लेट गया और अपने टैबलेट से गेम निकालकर खेलने लगा। उसकी मां बातें करने लगी। हम लोग कई घंटे तक बातें करते रहे, चाय पीते रहे, हंसते-खिलखिलाते रहे, मगर बच्चे ने हमारी तरफ देखा तक नहीं। बल्कि उसे जो चॉकलेट, बिस्कुट आदि दिए गए थे, उन पर भी उसने ध्यान नहीं दिया। मां ने उसे जबर्दस्ती बिस्कुट खिलाने की कोशिश की, जूस का गिलास थमाया, मगर वह नहीं माना। वह अपने खेल में ही लगा था।

आमतौर पर मध्यवर्ग के बच्चों के हाथों में इन दिनों मोबाइल या टैबलेट दिखाई देते हैं। यह उनके खेल के नए तरीके हैं। बल्कि अब तो स्कूलों में सरकारें हर एक बच्चे को लैपटॉप या टैबलेट देने की बातें करती हैं। इलेक्शन जितवाने में इन चीजों की आजकल बड़ी भूमिका मानी जाती है। हर राजनीतिक दल अपने-अपने घोषणा पत्रों में इन चीजों को मुफ्त देने का वायदा करता दिखता है। बच्चों की प्रगति में इन गिजमोज की भूमिका जरूरी मानी जाती है। किसी हद तक वे हैं भी।

लेकिन जिन विकसित या पश्चिमी देशों में इन चीजों का इस्तेमाल अरसे से हो रहा है, वहां अब वे इन पर पुनर्विचार कर रहे हैं। कुछ साल पहले रूस से एक खबर आई थी कि वहां अब गोपनीय कामों को कंप्यूटर से नहीं, टाइपराइटर से किया जा रहा है, क्योंकि विकीलीक्स के उद्घाटनों के बाद माना जाता है कि कंप्यूटर में कोई भी दस्तावेज सुरक्षित नहीं है। उसे किसी न किसी बहाने हक किया जा सकता है, चुराया जा सकता है। इसके अलावा, बच्चों के लिए स्क्रीन का बहुत ज्यादा प्रयोग उनकी आंखों, उनके स्वास्थ्य के लिए भी खतरनाक बताया जाता है। बार-बार ऐसी खबरें आती भी रहती हैं। हाल ही में कैलिफोर्निया की लास एंजेलिस व प्रिंसटन यूनिवर्सिटी में कंप्यूटर, लैपटॉप और कागज-कलम को लेकर कई प्रयोग किए गए। यहां एक भाषण के बीच अचानक छात्रों से कहा गया कि वे अपना काम करने के लिए लैपटॉप या कागज-कलम में से किसी एक का चुनाव करें। इस प्रयोग का उद्देश्य छात्रों की सीखने की क्षमता से जुड़ा था। इसके निष्कर्ष भी अनोखे थे। पता चला कि जिन्होंने लैपटॉप के मुकाबले कागज और पेन का इस्तेमाल किया, उन्होंने बहुत साफ-सुथरे ढंग से लिखा। सही नोट्स बनाए और अपने ज्ञान का प्रयोग भी किया। इनके मुकाबले जिन बच्चों ने लैपटॉप का इस्तेमाल किया था, उन्होंने अपने विवेक का इस्तेमाल कम किया।

इन निष्कर्षों पर चाहे हम पूरा भरोसा न करें, लेकिन लेख के शुरू में जिस छह साल के बच्चे का जिक्र मैंने दिया, उसकी मां ने बार-बार यह कहा था कि इसका ध्यान बस टैबलेट में समाए अपने खेलों पर ही लगा रहता है। क्लास में भी टीचर्स इस बात की शिकायत करते हैं कि यह उनकी बातों को ध्यान से नहीं सुनता, कहीं और खोया रहता है। यही नहीं, खेल अगर स्क्रीन पर हों, तो ऐसा महसूस होता है कि बच्चे की नजर अपने आसपास कहीं जाती ही नहीं। वह दुनिया देखकर सीखने की कला तो जैसे जानता ही नहीं। आजकल बहुत से बच्चों के अध्यापकों और माता-पिता की ऐसी ही शिकायतें

सुनाई देती हैं। तकनीक हमारे इस जमाने की आवश्यकता है, मगर वह कितनी हो, ताकि बच्चे उसे ही याद न रखें, और भी बातें जान-समझ सकें, इस बात पर विचार करना जरूरी है।

पिछले दिनों एक संस्था की भेजी बच्चों की बहुत सी हस्तलिखित रचनाएं देखने का मौका मिला था। हाथ से लिखी चीजें देखने का अवसर बहुत दिनों बाद आया था। इनमें बहुत से बच्चों का हस्तलेख इतना सुंदर था कि बचपन की मोती जड़ी लिखावट की बातें याद आ गईं। कभी सुलेख पर अतिरिक्त ध्यान दिया जाता था। जिस बच्चे का हस्तलेख खराब होता था, उसे निखारने की कोशिश की जाती थी। न सुधरे, तो तरह-तरह की सजा भी मिलती थी। और अब अपना ही आलम यह है कि हाथ से कुछ लिखना पड़े, तो जैसे आफत आ जाती है। फिर अफसोस भी होता है कि जिंदगी भर हाथ से लिखा, अब कंप्यूटर पर लिखना मजबूरी कैसे हो गया? इसलिए बच्चे कंप्यूटर भी इस्तेमाल करें और लिखना भी जानें, वरना हो सकता है कि वे भी हमारी तरह ही दुख मनाएं।



THE HINDU

Date: 27-12-17

Countering growing inequality

Indian social policy must raise health and education levels all around, as China has done

Pulapre Balakrishnan is Professor of Ashoka University and Senior Fellow of IIM Kozhikode

The release recently of the World Inequality Report 2018 has brought into focus an aspect of economic progress in India. This is the continuous growth in inequality here since the mid-1980s. To grasp this, consider the reported finding that the top 1% of income earners received 6% of the total income in the early 1980s, close to 15% of it in 2000, and receives 22% today. As this is a report on a global scale, we can see the trend in inequality across the world, providing a comparative perspective across countries.

In particular, it enables a comparison of economic progress made in India and China. This is not flattering of India. Since 1980, while the Chinese economy has grown 800% and India's a far lower 200%, inequality in China today is considerably lower than in India. The share of the top 1% of the Chinese population is 14% as opposed to the 22% reported for India. The authors go on to emphasise that growing inequality need not necessarily accompany faster growth, observing that inequality actually declined in China from the early 21st century. By then China had grown faster for longer than most countries of the world ever did.

Basket of indicators

The findings in the World Inequality Report serve as grist to the mill that is the study of the progress of nations. But before we proceed to reflect on them we may pause to consider their underlying methodology. First, the results are based on the share of top incomes. This is not invalid but some of the

findings may alter if we adopt measures of inequality that characterise the entire distribution. To be precise, the inequality ranking of China and India may now reverse. But this need not hold us back as it is evident that China's performance is far superior all round to that of India. China has grown faster, has far lower poverty and far higher average income, and its income distribution is less unequal at the very top. The World Development Indicators data released by the World Bank show that per capita income in China was five times that of India in 2016 while the percentage of the population living on less than \$1.90 a day was about 10 times less at the beginning of this decade. India has a forbidding gap to traverse in all directions, but for now let us focus on inequality.

It is the comparative perspective contained in the Report that makes it useful. India-based researchers have for some time now pointed out that the country is becoming less equal since 1991. Also, we need not turn to the experience of China to recognise that growth need not be unequalising. We know independently that inequality in India declined for three and a half decades since 1950 even as the economy grew steadily, though maybe not spectacularly. It is important to comprehend this outcome if we are to understand the source of inequality in India, not to mention why India lags China.

Now, is a comparison of the progress made in China and India meaningful at all? Yes it is, for though representing different political systems, they had both been large agrarian economies at similar levels of per capita income when they had started out in the early 1950s. Moreover, the absence of democracy in a society does not by itself guarantee faster economic growth and greater income equality. For a populous poor country to lift itself to a higher growth path and stay there requires imaginative public policy and a steady governance. We can see this in the divergent economic histories of North and South Korea. So what is it that China did better than India?

The Chinese clue

If there is to be a meta narrative for China's economic development, it is that its leadership combined the drive for growth with the spreading of human capital. Human capital may be understood as a person's endowment derived from education and robust health. When a population is more or less equally endowed, as it was in China when it began to draw ahead, the human capital profile of a country may be represented by a rectangle. Now the returns to labour would be relatively equal compared to the country in which the distribution of human capital is pyramidal, which is the case for India. To see the latter better, note that the share of the Indian population with secondary schooling is less than 15%. China had by the early 1970s achieved the level of schooling India did only by the early 21st century. The spread of health and education in that country enabled the Chinese economy to grow faster than India by exporting manufactures to the rest of the world. These goods may not have been the byword for quality but they were globally competitive, which made their domestic production viable. The resulting growth lifted vast multitudes out of poverty. As the human capital endowment was relatively equal, most people could share in this growth, which accounts for the relative equality of outcomes in China when compared to India. An ingredient of this is also the greater participation of women in the workforce of China, an outcome that eludes India.

While concluding this brief account of China's progress, two points may be made. China is no exception to the general history of progress made in East Asia, right down to the authoritarianism, only that China has remained even more authoritarian. This makes it appropriate to term progress in the country as growth through human capital-accumulation for there can be no human development without democracy, whatever may be the health and educational attainments of a population. Recent revelations suggest that

the massacre of pro-democracy protesters at Tiananmen Square in 1989 was far greater than believed to be.

This brings us back to India. India has lower per capita income, persistent poverty and by all accounts rising inequality. It may be said in the context that economic progress here has been neither efficient nor equitable. Democracy per se cannot be held responsible for this. There are States in India with superior social indicators than China. This shows that not only is democracy not a barrier to development but also that similar political institutions across India have not resulted in same development outcomes across its regions. Nor can we remain complacent that democracy is combined with superior social indicators in some parts of India when income levels are lower here than what China has demonstrated is achievable.

Deepening democracy

Given the growing inequality in India, the direction that public policy should now take is evident. There is need to spread health and education far more widely amidst the population. India's full panoply of interventions, invariably justified as being pro-poor, have not only not spread human capital, but they have also not been able to prevent a growing income inequality.

A ritualistic focus on the trappings of democracy, from frenetic election campaigns to stylised skirmishes in the legislatures, has not worked to deliver its promise. We now need to reorient public policy so that the government is more enabling of private entrepreneurship while being directly engaged in the equalisation of opportunity through a social policy that raises health and education levels at the bottom of the pyramid.
